International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(2): 119-121

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(2): 119-121
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 24-01-2017
Accepted: 25-02-2017

राहुल शर्मा
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू,

Correspondence
राहुल शर्मा
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू,

कृतकर्म के आधार पर पुनर्जन्म–एक वैदिक दृष्टि

राहुल शर्मा

सारांश
सभी शास्त्रकारो का यही निष्कर्ष है और सभी शास्त्रीय विवेचक पुनर्जन्म के सम्बन्ध में एकमत हैं। जन्म और मरण में अन्योन्य सम्बन्ध है अगर मृत्यु है तब जन्म भी स्वयं सिद्ध है। मृत्यु सिद्ध है तो जन्म क्योंकर असिद्ध हो सकता है। नित्य चेतन जीवात्मा का विभिनन योनियों को ग्रहण करने की प्रकिया से प्रायः कर्मों पर ध्यान एवं चिंतन केन्द्रित हो जाता है। वैदिक दर्शन का यही मत रहा है कि जैसे कर्म किये जाते हैं वैसे ही संस्कार या भाव बनते हैं, उन्हीं भावों के अनुसार ही आगामी देह या शरीर प्राप्त होता है। जिसे पुनर्जन्म कहा जाता है।

कूट शब्दः कृतकर्म, अक्षरशः, कियामाण, प्रारब्ध, पराभक्ति, अंगुल्यानिर्देश, वाग्दोषजन्य, अन्त्यज, निकृष्ट, इहलोक, स्थूलदेह, ध्रुवसत्य, प्रवाहमान।

प्रस्तावना
वेद–संहिता, ब्राह्मण–ग्रन्थ, उपनिषद, पुराण, स्मृति, सूत्र, महाभारत तथा रामायण आदि शास्त्रों में पुनर्जन्म सम्बन्धी विशद विवेचनाएँ मिलती हैं। वेद पुनर्जन्म को मुक्त कण्ठ से स्वीकार करता है। पुनर्जन्म हिन्दुधर्म का प्रधान विश्वास है। यही एक बात उसे इस्लाम तथा ईसाई धर्म से भिन्न भूमिका प्रदान करती है। पुनर्जन्म का यह विश्वास सिद्धान्त–रूप से अत्यन्त प्राचीन है। हिन्दू–ज्ञान का समस्त स्रोत वैदिक होने के कारण वैदिक वाङमय में उसके सूत्र बिखरे हुए हैं। उपनिषद् तो ऐसी कथाओं से भरे हुए हैं। जिनसे पुनर्जन्म सिद्धान्त में हमारे विश्वास की पुष्टि होती है, वेदों में कुछ कम प्रमाण नहीं हैं। ऋग्वेद मे एक स्थान पर परमात्मा को "असुनीति" संज्ञा से स्पष्ट किया गया है कि वह प्राण जीव को भोग के लिये एक शरीर से दूसरे शरीर तक ले जाता है। उस असुनीति प्रभु से प्रार्थना है कि वह पुनर्जन्म या अगले जन्मों में भी हमें सुख दे और ऐसी कृपा करे कि सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि हमारे लिये कल्याणकारी सिद्ध हों। [1] जैमिनीय ब्राह्मण में वर्णन है कि जो मैं पहले था सो मैं वही हूँ में इस लोक में पुनः पैदा हो गया हूँ। [2]
दर्शनों में चाहे आस्तिक हों या नास्तिक, केवल एक चार्वाक–दर्शन को छोड़कर सभी दर्शनकारों नें पुनर्जन्म का समर्थन किया है। पुनर्जन्म भारतीय दर्शन का एक प्रमुख तथा विवेच्य विषय है। स्थूलदेह विनश्वर है। इसके छहों भावविकारों का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। ''अस्ति जायते विपरिणमते वर्धते अपक्षीयते विनश्यति।'' यास्क मुनि की यह उक्ति तथा नचिकेता का यह वचन अक्षरशः सत्य है। जो जन्मते है, बड़े होते हैं, वे विकृत और क्षीण होकर विनष्ट होते रहते हैं 'सस्यमिव मर्त्यो जायते पच्यते च।' यहॉ के बड़े – बड़े दार्शनिकों, तत्व चिन्तकों, मनीषियों और तार्किकोने इस पर बड़ी ही गम्भीरता पूर्वक मनन चिन्तन किया है। शरीर की मृत्यु के साथ देहगत आत्मा की मृत्यु नही होती, बल्कि वह आत्मा उस योनि अथवा शरीर में प्राप्त, सचिंत, कियामाण एवं प्रारब्ध के संसकारो को लेकर अन्य शरीर को धारण करता है । यही पुनर्जन्म है। जीवात्मा अजर –अमर अविनाशी है। जब तक जीवों के कर्म एवं उनके संस्कार बने रहते हैं, तब तक जन्म मरणरूपी संसृति–चक्र चलता है। उन कर्मोंका क्षय भोग से, ज्ञान एवं प्रभुकी पराभक्ति से हो सकता है। और फिर पुर्नजन्म नहीं होता, यही भगवान् का कथन है–

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुर्नजन्म न विद्यते। [3]
सभी शास्त्रकारो का यही निष्कर्ष है और सभी शास्त्रीय विवेचक इस सम्बन्ध में एकमत हैं। आस्तिक दर्शनों में पुनर्जन्म का सिद्धान्त निर्विवाद–सा मान लिया गया है। गीता –जैसी सर्वतन्त्र–सिद्धान्त एवं विश्व–सम्मान्य पुस्तक में भी पुर्वजन्म का उल्लेख है। जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। (गीता २–२७)

श्रीभगवान की वाणी ध्रुवसत्य की ओर अंगुल्यानिर्देश कर रही है। जन्म और मरण में अन्योन्य सम्बन्ध है तो मृत्यु भी है और मृत्यु है तब जन्म भी स्वयं सिद्ध है। मृत्यु सिद्ध है तो जन्म क्योंकर असिद्ध हो सकता है।

पुनर्जन्म के कारण ही आत्मा के शरीर, इन्द्रियों तथा विषयों से सम्बन्ध जुड़ते रहते हैं और आत्मनो भोगायतनं शरीरम्। न्याय से उस जीवको सुख –दुख के भोगोंके लिये बार –बार एक शरीर से दुसरे में भटकना पड़ता है। हमारे शास्त्र में ८४ लाख योनियों की चर्चा कपोल–कल्पना नहीं है।यह तथ्यपूर्ण मनोवैज्ञानिक एवं रहस्यातिरहस्यपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्त है। हमारे दर्शन शास्त्र तो स्पष्टतः पुनर्जन्मप्रतिपादक है। अपने अकाट्य तर्को तथा सबल युक्तियों से ये विश्वके उन सभी ग्रन्थों को, जो पुनर्जन्मवादी सिद्धान्तों से दूर हैं। खुली चुनौती दे रहें हैं। पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्। –आद्यशंकराचार्य के इस कथन में कितना सार है, कितना तथ्य है, यह तो विचारणीय विषय है। नित्य चेतन जीवात्मा का विभिनन योनियों को ग्रहण करने की प्रक्रिया से प्रायः कर्मों पर ध्यान एवं चिंतन केन्द्रित हो जाता है। वैदिक दर्शन का यही मत रहा है कि जैसे कर्म किये जाते हैं वैसे ही संस्कार या भाव बनते हैं, उन्हीं भावों के अनुसार ही आगामी देह या शरीर प्राप्त होता है।

ऋग्वेद 1/164/19 मन्त्र का यह कहना है कि जो नीचे थे वे उपर और जौ उपर थे वे नीचे पहुंच जाते हैं। जीवात्मा जिन कर्मों को करता है, वे धुरे की भांति युक्त होकर इसे लोक लोकान्तरों या एक योनि से दूसरी योनि में ले जाने की मान्यता है। [4] मृत शरीर वाला जीवात्मा अपने स्वधाकृत कर्मों के भाव या संस्कारों के अनुसार अमर होते हुआ भी अन्य मर्त्य शरीर को सायोनि बनाकर पुनः सांसारिक कार्य–कलापों में विचरण करता है। [5]] महर्षि मनु ने कर्मगत दोषों में जो शरीरिक दोष हैं उससे वृक्षादि स्थावर योनि में, वाग्दोषजन्य से पक्षी–मृगादि, तथा मानसिक दोषों के कारण अन्त्यजादि योनियों या शरीरों को प्राप्त होने का उल्लेख किया है। [6] गुणों की दृष्टि से देखा जाय तो सात्विक गुण सम्पन देव योनि को प्राप्त करते हैं जैमिनीयोपनिषद ब्राह्मण द्वारा पुनर्जन्म को स्वीकार करते हूए ''यस्मिन कुले अभिध्यायेत्। यदि ब्राह्मणकुले यदि राजकुले तस्मिन्नजायते। स एतमेव लोकं पुन प्रजानन्नभ्यारोहन्नेति '' का उल्लेख करना योनिगमन का मूल है । [7] ब्राह्मण कुल में जन्म ले या क्षत्रिय कुल में, इन सबका आधार तो कृतकर्म ही हैं। उपनिषद् काल की मान्यता वही है जो वैदिक काल की रही है। प्रायः कर उपनिषद् साहित्य कर्म के आधार पर विभिन्न योनियों की प्राप्ति को स्वीकार करता है प्रश्नोपनिषद् तीन श्रेणियां मानता है कि– जीवात्मा पुण्यकर्म से पुण्य लोक में, पाप से निकृष्ट योनियों में, पाप पुण्य से मनुष्य योनि में जन्म लेता है। [8] ऐसी ही मान्यता अन्य उपनिषदों में मिलती है। [9] वैदिक काल से प्रवाहमान उक्त सिद्धान्त की सूत्र ग्रन्थों में भी अपनी प्रतिष्ठा बनी हुई है। सांख्य दर्शन द्वारा '' ऊर्ध्वं सत्वविशाला,तमोविशालामूलतः, मध्ये रजो विशाला'' [10] कहा जाना तीनों कोटिगत योनियों पर प्रकाश डालता है। इस लोक में जो सुख–दुःख का वैषम्य प्रत्यक्ष है यह सब कर्मों की भिन्नता के कारण है [11]। वर्तमान शरीर या योनि की प्राप्ति पूर्वकृत कर्मों के आधार पर ही मिला करती है यह न्यायदर्शनकार ने सहज भाव से स्वीकार किया हैं। [12] वैशेषिक दर्शन में जीवात्मा का शरीर से वियोग होना, दूसरे शरीर में प्रवेश करना, खाना–पीना और विभिन्न योनियों के संयोग का मूल कारण, अदृष्ट कर्मों को कहा है। महर्षि कणाद के मत में धर्माधर्म, पुण्यापुण्य इत्यादि कर्म 'अदृष्ट ' शब्द से अभिप्रेत है। [13] इष्टादि कर्मों का करने वाला जीवात्मा परलोक में उन कर्मों के फलोपभोग समाप्ति पर शेष कर्मानुसार विभिन्न योनियों में पुनः यहाँ जन्म ग्रहण करता है।

वर्तमान में जो भोग प्राप्त हुआ है वही पुर्वकृत कर्मों का परिणाम है, सम्प्रति देहगत हुंए कर्म हैं तथा उनका संचय होकर प्रारब्ध के रूप में आगामी भोग के हेतु बन जाता हैं यही कर्मफल भोग है। अथर्ववेद में इस सिद्धान्त का उल्लेख मिलता है कि जो धर्म पहले किए गए होते हैं, तदनुसार ही इस जीवात्मा को अमुक देह की प्राप्ति होती है। [14] ऋग्वेद में वर्तमान जन्म या पुनः जन्म में मन, आयु, प्राण और समस्त स्वस्थ इन्द्रियों की प्राप्ति तथा दुखों एवं बुरे कर्मों से सर्वथा पृथक होने के लिए यजुर्वेद में कामना की गई है। [15] बृहद्‌ारण्यक उपन्षिद् में भी कहा गया है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है उसे वैसे कर्मों वाला जन्म प्राप्त होता है। [16] कर्म–सरिता–प्रवाहमें बहती हुई जीवन नौका के पूर्वजन्म और पुनर्जन्म दो किनारे है। पूर्वजन्मकृत कर्म इस जन्म तथा इस जन्म के कृतकर्म पुनर्जन्म धारण करने कराने के हेतु हैं। इस तथ्य की सच्चाई सिद्ध करनेके लिये अनेक शास्त्रीय प्रमाण साक्षी हैं। श्रीलक्ष्मण जी गुहराज से कहते हैं–

कः कस्य हेतुर्दुःखस्य कश्च हेतुः सुखस्य वा।
स्वपूर्वार्जितकर्मैव कारणं सुखदुःखयोः।।

अर्थात् कौन किसके दुःखका हेतु है तथा कौन सुख का? दूसरा कोई किसी दूसरेके सुख दुख मे कारण नहीं होता, पूर्वजन्म में किये हुए अपने ही पुण्य या पापात्मक कर्म मनुष्य को सुख दुःखका भोग प्रदान करते हैं। इसी प्रकार कठोपनिषद में कहा गया है कि मृत्यु के पश्चात् इन जीवात्माओंमें से अपने–अपने कर्मों के अनुसार कोई–कोई तो वृक्ष–पाषाण आदि अचल शरीर धारण करते है। [17] निष्कर्ष रूंप में सभी शास्त्रकारों के मत लगभग एक ही सिद्धान्त से समझौता करते हैं कि पुनर्जन्म कृतकर्मों पर अधारित है। इस प्रकार के और भी विचार आजकल के वैज्ञानिक भी पुनर्जन्म की सिद्धि में प्रकट करते हैं। हिन्दू–सनातन धर्मका तो विशाल भवन ही कृतकर्म और पुनर्जन्म की नींव पर बांधा गया हैं। हिंदूओंके तो रक्तमें सदैव इस सिद्धान्त की धारा ही बहती रहती है और इसलिए उनका व्यावहारिक जीवन बहुत ही संतुलित, संयमित, नियमित और मर्यादित ढंग से व्यातीत करनेका प्रविधान है, जिससे इहलोक और परलोक दोनो मग्लमय बन सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्। ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्त मनुमते मृड्या नः स्वस्ति।।
   पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनद्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।
   पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः।। ऋ॰ वे॰ 10/57/6–7
2. योऽसौ आस सोऽयं अस्मीति पुनरहैवास्मिन् लोक आजायते। जै॰ ब्रा॰ 2/106
3. गीता 8/16
4. ये अरवाञ्चरतां उ पराञ्चा आहुर्ये पराञ्चरतां उ अर्वाञ्च आहुः।
   इन्द्रश्च या चकथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति।।
5. ऋग्वेद 1/164/30
6. शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः
   वाचिकैः पक्षिमृगतां मासैरन्त्यजातिताम्।। मनु. 12/9
7. जै. उ. ब्रा. 3/5/9/4
8. अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्यं लोकं नयतिपापेन पापम् उभाभ्यामेव मनुष्य लोकम्। प्रश्नो. उ.3/7
9. सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मेभ्यः प्रतिधीयते..... ऐत. उप. ,4/4
10. सं. सू. 3/48–50
11. कर्मवैचित्र्यात प्रधानचेष्टा गर्भ्सदासवत्। सां. सू. 3/15
12. पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पतिः।। न्या. 3/2/61
13. अपसर्पणमुपसर्पणमशित–पीतसंयोगः कार्यान्तर संयोगाश्चेतयदृष्टकारितानि। वै. दर्शन 5/2/17
14. यद्वै विद्वान् कर्म करोत्यस्मादिदमिति वसीयानेव तेन भवति। ष. वि., 3/4/31

15. पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन्।
वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवाद्यात्।। यजु॰ 4/15
16. यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुर्भवती पापकारी पापो भवति
.....तदभिसम्पद्यते।। वृहद॰ उप॰ 4/4/5–7
17. योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयान्ति यथार्कम यथाश्रुतम।। कठ. उ. 2/2/7